International Journal of Sanskrit Research 2019; 5(6): 36-38

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2019; 5(6): 36-38
© 2019 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 24-09-2019
Accepted: 28-10-2019

सोनिया
शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत।

Corresponding Author:
सोनिया
शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत।

वैदिक साहित्य में जीवन आदर्श

सोनिया

सारांश
किसी भी समाज की सभ्यता का पुष्ट परिचायक उसकी विभिन्न सामाजिक संरचनाएँ और उससे भी अधिक उन संरचनाओं के मूल में अवस्थित समाज की मूल्य व्यवस्था होती है।
ऋग्वेद के समय से ही भारत एक सभ्य और मानवीय मूल्यों पर आधारित सुसंगठित समाज रहा है, अतः वैदिक साहित्य में ही विभिन्न सामाजिक संरचनाओं के मूलभूत विचारों, आदर्शों और मूल्यों का स्वरूप स्पष्टतया दिखाई देता है।
इस पत्र में व्यक्ति के व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन से सम्बन्धित आदर्शों का वर्णन वैदिक साहित्य के सन्दर्भ में किया जाएगा।

मुख्य शब्द– पुरुषार्थ चतुष्टय, एकात्म मानवतावाद, वैचारिक ऐक्य, व्यष्टि और समष्टि।

प्रस्तावना
किसी भी समाज की सूक्ष्मतम इकाई व्यक्ति होता है, अतः व्यक्ति जो भी कार्य करता है, उसका प्रभाव उसके जीवन पर तो पड़ता ही है, इसके साथ–साथ उसके परिवार एवं समाज पर भी पड़ता है अतः व्यक्ति को ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए जिससे उसका, उसके परिवार का एवं समाज का अहित हो। वर्तमान समय में व्यक्ति अपने आप को साध्य मानता है, वह व्यक्तिगत स्वतंत्रता के नाम पर अपने प्रत्येक कृत्य को उचित ठहराता है और दम्भपूर्वक कहता है कि उसका जीवन, उसकी इच्छा, वह चाहे जो करे, अन्य लोगों को इससे क्या? परन्तु ऐसा नहीं होना चाहिए।
ऋग्वेद के अक्षसूक्त में ऋषि ने जुआरी की दुर्दशा का वर्णन किया है। जुआरी अपने व्यक्तिगत व्यसनों के कारण अपने परिवार एवं समाज का अहित तो करता ही है, अन्ततः अपना ही विनाश कर लेता है और समाज से पूरी तरह कट जाता है– न नाथितो विन्दते मर्डितारम्।[1] उस व्यक्ति की स्थिति समाज में उस बूढ़े घोड़े के समान हो जाती है, जो बिकाऊ है परन्तु उसे कोई खरीदने को तैयार नहीं होता अर्थात् उस व्यक्ति का समाज में कोई महत्त्व या स्थान नहीं होता।
परिवार के सदस्य भी उस जुआरी से सम्बन्ध विच्छेद कर लेते हैं और उसे पहचानने से भी मना कर देते हैं–

एनमाहुर्नजानीमः नयता बद्धमेतम्[2]
द्वेष्टि श्वश्रूरप जाया रुणद्धि[3]

इस प्रकार ऋषि ने जुआरी के मुख से आत्मिक, शारीरिक, पारिवारिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और चारित्रिक सम्पूर्ण विनाश का निरूपण करके जुआ, लोभ–लालच आदि व्यसनों से व्यक्ति को दूर रहने का उपदेश दिया है।

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व ..... ।[4]

पं. दीनदयाल उपाध्याय ने 'एकात्म मानवतावाद' का दर्शन दिया था जो वैदिक साहित्य से प्रभावित था। उन्होंने 23 अप्रैल 1965 के भाषण में कहा था कि "भारत में व्यक्ति या मनुष्य मन, बुद्धि, शरीर

[1] ऋग्वेद 10.34.3
[2] ऋग्वेद 10.34.4
[3] ऋग्वेद 10.34.3
[4] ऋग्वेद 10.34.13

और आत्मा इन चारों का समुच्चय है। हम उसको टुकड़ों में बांटकर विचार नहीं करते। उनके अनुसार पश्चिम में जो संकट है उसका कारण यह है कि उन्होंने मनुष्य के एक भाग पर विचार किया। पश्चिम में जब लोकतंत्र के लिए आन्दोलन चला तो उन्होनें कहा– Man is a political animal अर्थात् मनुष्य एक राजनीतिक जीव है। अतः उसकी राजनीतिक आकांक्षा की तृप्ति होनी चाहिए। फिर एक राजा बनकर बैठे औरशेष लोग राजा नहीं हों ऐसा क्यों? राजा सबको बनना चाहिए। इस आकांक्षा की पूर्ति के लिए उन्होंने सबको वोट देने का अधिकार दिया। लोकतंत्र में यह अधिकार मिल गया तो अन्य अधिकार कम हो गए। लोगों से कहा गया कि तुम चिंता क्यों करते हो? मतदान का अधिकार तो तुम्हें है ही, तुम राजा हो, राजा बनकर बैठे रहो तो लोगों ने कहा– इस राज से हमें क्या करना है, यदि खाने को ही नहीं मिल रहा। हमें पहले रोटी चाहिए। इसके बाद कार्ल मार्क्स आए। उन्होंने कहा– हाँ, रोटी तो सबसे प्रथम वस्तु है, रोटी के लिए लड़ो। उन्होंने मनुष्य को रोटीमय बना दिया परन्तु जो लोग कार्लमार्क्स के मार्ग पर चले उन्हें अनुभव हुआ कि राजा तो हाथ से गया, रोटी भी नहीं मिली। किन्तु दूसरी ओर अमेरिका है– वहाँ रोटी भी है, राज भी है, इस पर भी सुख, शान्ति नहीं। जितनी आत्महत्याएँ अमेरिका में होती हैं और जितने लोग वहाँ नींद की दवाई लेकर सोने का प्रयत्न करते हैं उतना विश्व में और कहीं नहीं होता। लोग कहते हैं– रोटी मिल गयी, राज मिल गया पर नींद उड़ गई। अब लोग कहते हैं– बाबा, नींद लाओ। किसी प्रकार से नींद लाओ।"[5]

विचारकों को लगा कि उनकी जीवन पद्धति में कहीं न कहीं मौलिक त्रुटि अवश्य है, जिससे समृद्धि के बाद भी वे सुखी नहीं हैं। कारण यह है कि वे मनुष्य का पूर्ण विचार नहीं कर पाए जैसा कि वैदिक साहित्य में किया गया है। वैदिक साहित्य में मनुष्य के सम्पूर्ण भागों पर विचार किया गया है–

मनविषयक विचार– तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।[6]
शरीरविषयक विचार– नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः .....[7]
आत्मविषयक विचार– आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो.....[8]

परिवार, व्यक्ति और समाज के मध्य कड़ी का काम करता है क्योंकि व्यक्तियों से परिवार और परिवार से समाज बनता है। वैदिक काल से ही भारत में संयुक्त परिवार की परम्परा चली आ रही है, परन्तु वर्तमान समय में अत्यन्त स्वार्थवाद, अत्यन्त एकत्ववाद और अन्य आर्थिक कारणों के कारण परिवार का विखण्डन हो रहा है, जो समाज के लिए उपयुक्त नहीं है।

अथर्ववेद के सांमनस्यम् सूक्त में ऋषि संयुक्त परिवार का प्रबल समर्थन करता है और ऋषि संयुक्त परिवार में होने वाले कलह, कलह इत्यादि के कारण होने वाले परिवार के विघटन से भी परिचित है, इसीलिए ऋषि संयुक्त परिवार के मूल घटकों और संयुक्त परिवार की सफलता के कारणभूत तत्त्वों का भी निरुपण करता है।

संयुक्त परिवार का मूल तत्त्व है– "सौमनसः" सौमनसः से तात्पर्य है– शोभनं (अनुकूलं) मनः यस्य सः, तस्य भावः। अर्थात् सबका मन एक दूसरे के अनुकूल हो।

1. वैचारिक ऐक्य अर्थात् विचारों की समानता। यहाँ वैचारिक ऐक्य से तात्पर्य यह नहीं है कि सभी एक ही तरह सोचें क्योंकि ऋषि जानता है– "मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना" परन्तु अलग–अलग विचार होने पर भी कहीं न कहीं एकता का जोड़ रखना होगा। परिवार के सभी सदस्यों के विचारों को सुनना, उनके मत को समझना तथा गुणवत्ता के विषय में सोचना और दूसरों की भावनाओं का सम्मान करना ही वैचारिक ऐक्य है।

यथा– पहिये के अरे अलग–अलग दिशाओं में जाते हैं, फिर भी एक नाभि से जुड़े रहते हैं, तभी पहिया चलता है, उसी प्रकार परिवार के सदस्यों को भी अलग–अलग विचार होने के बावजूद भी एक विचार पर सहमत होना होगा तभी परिवार चलेगा।

2. संयुक्त परिवार के लिए कार्यों में ऐक्य होना भी आवश्यक है। कार्मिक ऐक्य से तात्पर्य यह नहीं कि सभी एक ही कार्य करें, अपितु परिवार का कोई सदस्य ऐसा कार्य न करे जो परिवार की मर्यादा के विरुद्ध हो। परिवार की एक मर्यादा होती है, जिसका उल्लंघन करने की स्वतंत्रता व्यक्ति को नहीं दी जाती। परिवार में व्यक्ति की स्वतंत्रता केवल नाभि से परिधि तक होती है।

अक्षसूक्त में जुआरी परिवार की मर्यादा का उल्लंघन करता है, जिसके कारण परिवार टूट जाता है अर्थात् परिवार के सभी सदस्य उससे सम्बन्ध विच्छेद कर लेते हैं।

इसके अतिरिक्त परिवार के सदस्यों का एक–दूसरे के प्रति व्यवहार कैसा हो, इसका वर्णन भी ऋषि करता है–

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः[9]
मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा[10]

अर्थात् भाई, भाई से तथा बहन, बहन से द्वेष न करे, अपितु सभी आपस में प्रेमपूर्वक रहें। एक दूसरे के प्रति मधुर एवं कल्याणकारी वाणी का प्रयोग करें–

वाचं वदत भद्रया[11]

जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्[12] अर्थात् पत्नी, पति से शान्तियुक्त तथा मधुर बातें करे। ऐसा नहीं है कि पत्नी ही पति से मधुर बातें करे। अथर्ववेद में कहा गया है कि पति भी पत्नी से मधुर बातें करे–

चारु संभलो वदतु वाचमेताम्[13]

इसके अतिरिक्त पत्नी और पति के सम्बन्ध में विषय में ऋग्वेद में भी कहा गया है–

विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ, सं मातरिश्वता..... ।[14]

अर्थात् जिस प्रकार उष्ण और शीतल जल को मिला देने से उनका स्वभाव एक समान हो जाता है, उनमें पार्थक्य नहीं किया जा सकता। उसी प्रकार पति–पत्नी में ऐक्य भाव हो, दोनों के मन एवं हृदय में भेद, संदेह इत्यादि भाव न रहें।

परिवार में बड़ों का सम्मान करना चाहिए, क्योंकि बड़ा व्यक्ति ही परिवार को जोड़े रखता है और परिवार के सदस्य उसके अनुभवों से लाभान्वित होते हैं।

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनः (अथर्ववेद 3.30)[15]

इस प्रकार व्यक्ति के पारिवारिक जीवन के विषय में वेदों में जो आदर्श प्रस्तुत किए गए हैं, यदि उन्हें वर्तमान समय में अपनाया

[5] दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानव दर्शन, सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, छठा संस्करण, जून 2015, पृ.– 23–25
[6] शुक्ल यजुर्वेद 34.1
[7] मुण्डकोपनिषद् 3/2/4
[8] बृहदारण्यकोपनिषद्– 2/4/5
[9] अथर्ववेद– 3/30/2
[10] वही– 3/30/3
[11] वही– 3/30/3
[12] वही– 3/30/2
[13] अथर्ववेद 14/1/31
[14] ऋग्वेद 10/85/47
[15] अथर्ववेद 3/30/5

जाए तो परिवार का विखण्डन रोका जा सकता है। सामंनस्यम् सूक्त के सिद्धान्तों को किसी समाज पर भी घटित किया जा सकता है क्योंकि समाज का अर्थ ही होता है– एक साथ रहकर एक दूसरे के सहयोग से जीवनयापन करना और जहाँ यह सहयोग जितना अधिक होगा, वह समाज उतना ही उन्नत होगा। वेदों में ऐसे अनेक मन्त्र हैं जिनमें सामंजस्य और सहयोग का भाव स्पष्ट रूप से झलकता है–

पुमान्पुमान्सं परिपातु विश्वतः[16]
योगक्षेमो नः कल्पताम्[17]
सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्[18]
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।[19]

मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे[20] अर्थात् समाज में मनुष्य एक दूसरे को मित्र भाव से देखें तभी समाज में मैत्री, प्रीति, सहानुभूति, सहयोग इत्यादि भावनाएँ विकसित होंगी। इससे समाज में सभी का कल्याण होगा क्योंकि समाज सहयोग की भावना पर ही आश्रित है। यदि समाज समृद्ध होगा तभी राष्ट्र समृद्ध होगा।

आर्थिक जीवन से सम्बन्धित आदर्श–

वेदों में पुरुषार्थचतुष्ट्य को जीवन का उद्देश्य माना गया है। पुरुषार्थचतुष्ट्य से तात्पर्य है– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। वैदिक साहित्य में यद्यपि मोक्ष को परम पुरुषार्थ माना है परन्तु अन्य पुरुषार्थों की भी अवहेलना नहीं की गई है।

वर्तमान समय में अधिकांश लोग केवल अर्थ को ही एकमात्र पुरुषार्थ मानते हैं जो कि उचित नहीं है। इस सन्दर्भ में वैदिक साहित्य से प्रेरणा लेनी चाहिए और इनके मध्य समन्वय स्थापित करना चाहिए।

वेदों में धनोपार्जन की निन्दा नहीं की गई है, अपितु वेदों में ऐसे अनेक मन्त्र प्राप्त होते हैं जिनमें धन प्राप्ति की प्रार्थनाएँ की गई हैं–

स नो वसून्याभर[21]
उभा हि हस्ता वसुना पृणुस्व....[22]
वयं स्याम पतयो रयीणाम्[23]

परन्तु वेदों में अनुचित साधनों जैसे– चोरी, छल, कपट और जुआ आदि से धन कमाने की निन्दा की गई है।

अक्षैर्मा दीव्यः ..... ।[24]
इसी सन्दर्भ में महात्मा गांधी ने भी कहा है– साध्य के साथ–साथ साधन की भी पवित्रता होनी चाहिए।[25]

चूँकि वर्तमान समय में सामज में आर्थिक विषमतायें बढ़ती जा रही हैं। अमीर व्यक्ति, और अमीर होता जा रहा है, गरीब व्यक्ति, और गरीब होता जा रहा है। इस समस्या का समाधान भी वैदिक साहित्य में देखा जा सकता है। धनान्नदानम् सूक्त में ऋषि कहते हैं कि समाज में यदि कोई व्यक्ति साधन सम्पन्न है तो उसे निर्धन एवं जरुरतमंद व्यक्ति की सहायता करनी चाहिए।

पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान् ..... ।[26]
य आध्राय चकमानाय पित्वोन्नवान्त्सन्नफितायोपजग्मुषे।
स्थिरं मनः कृणुते सेवते पुरोतो चित्स मर्डितारं न विन्दते।।[27]
अपृणन्मर्डितारं न विन्दते[28]

अतः यदि आज वैदिक ऋषियों के नैतिक दृष्टिकोण को अपनाया जाए और व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि के विषय में विचार किया जाए तो समाज में आर्थिक विषमता तथा जमाखोरी आदि समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।

निष्कर्ष– इस प्रकार वेदों में जीवन के लिए उपयोगी बातों के बारे में गइराई से विचार किया गया है जो न केवल तत्कालीन समय में अपितु वर्तमान समय में भी अत्यन्त उपयोगी हैं। वर्तमान समय में जीवनोपयोगी मूल्यों का बड़ा संघर्ष चल रहा है। अत्यंत एकत्ववाद और स्वार्थवाद के कारण राष्ट्र, समाज यहाँ तक कि व्यक्तियों का ही विखण्डन हो रहा है और समाज अत्यन्त भौतिकतावाद की ओर अग्रसर हो रहा है। अतः आज फिर से जीवन मूल्यों पर विचार करना आवश्यक हो गया है और इस विषय में वेद महत्त्वपूर्ण दृष्टि दे सकते हैं।

सन्दर्भ

1. सं. कम्बोज, डॉ. जियालाल. ऋग्वेदसंहिता. विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, 2006.
2. तिवारी, डॉ. शशि. वैदिक अध्ययन. प्रथम संस्करण, न्यू भारतीय बुक कार्पोरेशन, दिल्ली, 2004.
3. वेदश्रमी, पं. वीरसेन. वैदिक सम्पदा. गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली.
4. ऋषि, डॉ. उमाशंकर शर्मा. ऋक्सूक्तनिकरः. चौखम्बा पब्लिशर्स, वाराणसी, 1999.
5. अथर्ववेदसंहिता. सं. शर्मा, पं. रामस्वरूप. चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1977.
6. बृहदारण्यकोपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर, सम्वत् 2074
7. तिवारी, डॉ. शशि. मुण्डकोपनिषद्. मेहरचन्द लछमनदास पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2011.
8. उपाध्याय, पं. दीनदयाल. एकात्म मानव दर्शन. सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015.
9. डॉ. कृष्णलाल. वैदिक संग्रह. प्रथम संस्करण, इन्दु प्रकाशन, दिल्ली, 1973.
10. प्रो. महावीर. वेदों में आर्थिक चिन्तन. प्रगतिशील प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014.
11. फड़िया, डॉ. बी.एल.. भारतीय राजनीतिक चिन्तन. साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा.

[16] यजुर्वेद 29/51
[17] यजुर्वेद 22/22
[18] ऋग्वेद 10/191/2
[19] वही 10/191/4
[20] यजुर्वेद 36/18
[21] यजुर्वेद 15/30
[22] यजुर्वेद 5/19
[23] ऋग्वेद 10/121/10
[24] ऋग्वेद 10/34/13
[25] डॉ. बी.एल. फड़िया, भारतीय राजनीतिक चिन्तन, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, पृ.– 286
[26] ऋग्वेद 10/117/5
[27] ऋग्वेद 10/117/2
[28] वही 10/117/1